बोध कलश

(बोध-कथा संग्रह)

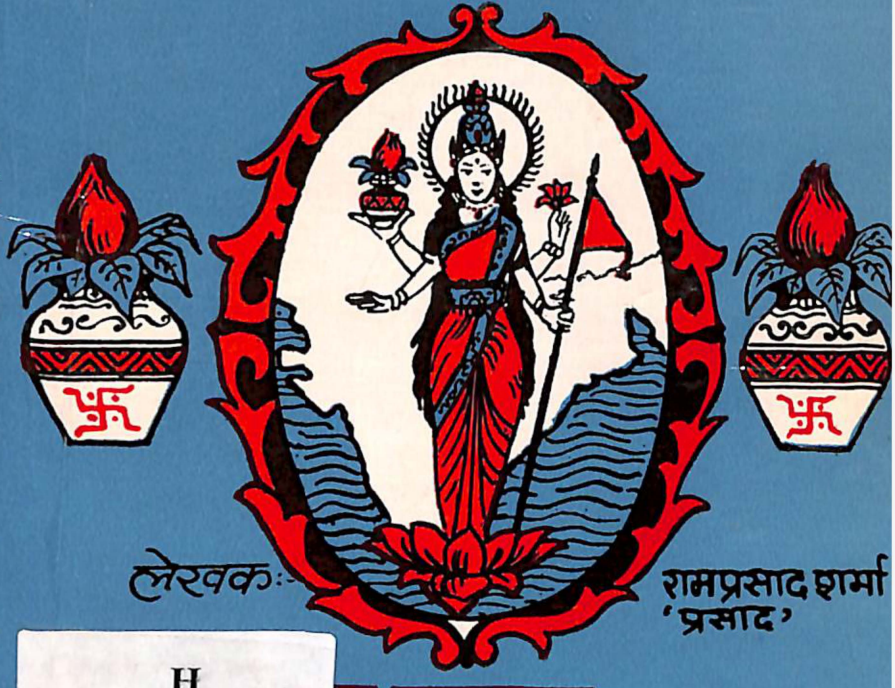

लेखक: रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

H
028.5 Sh 23 B

म प्रकाशन
ा०आ०: सिहाल
तहसील: नूरपुर
जिला: कांगड़ा (हि०प्र०) 176053

028.6
Sh 23B

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SHIMLA

बोध-कलश

(बोध-कथा संग्रह)

लेखक
रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

CATALOGUED

राम प्रकाशन
पो० आ० : सिहाल
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा (हि० प्र०) 176053

प्रथम संस्करण : 1986

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Sh 23 B
G1258

2000 प्रतियां

H
028.5
Sh23B

सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं

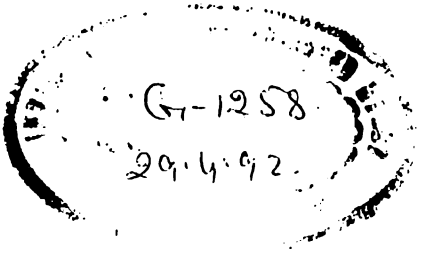

मूल्य : 10 रुपये

मुद्रक :
पसरीचा आर्ट प्रिन्टर्स,
रघुवर पुरा चौक,
गांधी नगर, दिल्ली-31

अपनी बात

बोध-कलश को बोध कथाओं से भरा गया है। बौधिक व मानसिक विकास के लिए ये बोध कथाएं बड़ी उपयोगी हैं। इन बोध कथाओं को सरल व सरस भाषा में लिखा गया है ताकि हर वर्ग का पाठक बड़ी सुगमता से पढ़ व समझ सके। सचमुच ये बोध कथाएं आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करने वाली हैं। सद्‌बुद्धि के लिए प्रेरणा देने वाली हैं।

आशा है पाठक इन्हें अवश्य पसन्द करेंगे।

रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'
पो० आ० : सिहाल
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा (हि० प्र०) 176053

मुक्ति का साधन

सत्य की खोज में घर से निकल पड़ा वालक नरेन्द्र। नगरों में, गांवों में भ्रमण करने लगा। एक नगर से दूसरे नगर को। एक गांव से दूसरे गांव को पैदल चल कर ही जाता। पैदल चलते-चलते एक निर्जन और सुनसान स्थान आया। वहां पर एक वड़ा सा तालाव था। पानी से लवालव भरा पड़ा था। उस तालाव के किनारे वड़े-वड़े आम और जामुन के पेड़ थे। बहुत से वन्दरों ने वहां पर डेरा जमाया था। वे उन पेड़ों पर कूद-फांद रहे थे। नरेन्द्र को देख वे पेड़ों से नीचे उतर आए और घुड़कियां करने लगे। नरेन्द्र सहम गया।

अन्त में उसे एक उपाय सूझा। उसने वहां से भाग निकलने के लिए तेजी से कदम वढ़ाए। वन्दर पीछा करने लगे। नरेन्द्र अकेला था और वन्दर अनेक। अव क्या किया जाए? नरेन्द्र इन्हीं विचारों में डूव गया। वह भयभीत होने लगा। एकाएक किसी की आवाज उसके कानों में पड़ी--भागो मत मुकावला करो।' उसने पीछे मुड़ कर देखा यह आवाज दूर पीछे आ रहे एक वृद्ध पुरुष की थी।

वृद्ध को आवाज को सुनकर नरेन्द्र के मन में कुछ धैर्य बंधा उसने पास पड़ी एक छड़ी को उठाया और उन्हें खदेड़ने लगा। वन्दर छड़ी को देखकर भाग गए। इतने में वह वृद्ध पुरुष भी आ पहुंचा। उसने नरेन्द्र से पूछा—'अरे! तुम भाग क्यों रहे थे।'

नरेन्द्र वोला--'मैं इन बन्दरों की हरकतों को देखकर सहम गया था।'

वृद्ध बोला—'फिर भी तुम्हें मुकाबला करना चाहिए था।'

नरेन्द्र ने कहा—'मैं अकेला था, ये बन्दर सैकड़ों की संख्या में। भला मैं इनका मुकाबला कैसे करता? आपके आने से साहस बढ़ गया और फिर मैंने इन्हें भगा दिया।'

वृद्ध समझाते हुए बोला—'अगर मैं न आता तो अवश्य ये बन्दर तुम्हें हानि पहुंचाते। मैंने तो कुछ भी नहीं किया। तुमने ही इन बन्दरों को दूर भगाया है। तुम अपने मनोबल से कठिन से कठिन काम को भी कर सकते हो। याद रखो, भागने से कभी मुक्ति नहीं होती। मनोबल के साथ मुकाबला करने से ही मुक्ति मिलती है। यही मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।'

बालक नरेन्द्र को उस वृद्ध की बातों को सुनकर अद्भुत बोध प्राप्त हुआ। वही बालक नरेन्द्र बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसने अमेरिका जैसे देशों में पहुंच कर हिन्दू धर्म का डंका बजाया।

—०—

आचार्य विनोबा का उपदेश

किसी व्यक्ति को कुसंगति में पड़ कर शराब पीने की आदत पड़ गई। इस बुरी आदत के वशीभूत होकर उसने घर का सारा धन नष्ट कर दिया। उसका स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा। समाज में सब उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगे। समाज से तिरस्कृत होकर उसनें शराब पीने की आदत को छोड़ना चाहा। आदत ऐसी पड़ गई थी कि छुटकारा मिलना आसान न था। एक-आध सप्ताह वह संयम से काम लेता पर वह फिर पीना शुरू कर देता। एक दिन उसके गांव में भू-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य विनोबा भावे पधारे। वह उनके पास गया और बोला—'महात्मन! शराब पीने की आदत मेरा पीछा नहीं छोड़ रही। आप ही कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे शराब मेरा पीछा छोड़ दे।'

आचार्य विनोबा भावे उसकी बात को सुनकर मुस्कराने लगे। फिर बोले—'अच्छा, तू कल प्रातः ही मेरे आश्रम में आना। मैं कमरे के भीतर रहूं। बाहर से मुझे आवाज दे देना। मैं आ जाऊंगा। तुम्हें इस आदत से छुटकारा पाने का उपाय बतलाऊंगा।'

वह व्यक्ति अपने घर चला गया। सारी रात सोचता रहा। जिस आदत को मैं वर्षों से न छोड़ सका वह आचार्य विनोबा के उपाय से भला कैसे छूटेगी? सारी रात नींद न आई। दूसरे दिन

प्रातः ही वह विनोवा के आश्रम में पहुंच गया। विनोवा जी कमरे के अन्दर थे। वाहर से उस व्यक्ति ने विनोवा जी को आवाज लगाई। अन्दर से विनोवा जी वोले—'अरे भाई! मैं वाहर आने में असमर्थ हूं। यह खम्भा मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा।'

उस व्यक्ति ने कमरे के भीतर झांक कर देखा आचार्य विनोवा भावे एक खम्भे को पकड़े हुए हैं। वह आश्चर्यचकित होकर वोला—'आचार्य जी! यह खम्भा तो आपने पकड़ा हुआ है और फिर आप कह रहे हैं कि यह खम्भा मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा। आप इसे छोड़ दीजिये। यह झट आपका पीछा छोड़ देगा।'

आचार्य विनोवा उस शरावी को वोध कराते हुए वोले—'जिस तरह मैं खम्भे को पकड़े हुए था उसी तरह तुम भी शराव को पकड़े हुए हो। शराव तुम्हें नहीं, वल्कि तुम शराव को नहीं छोड़ रहे हो। इसलिए यदि तुम शराव को छोड़ दोगे तो शराव अवश्य तुम्हारा पीछा छोड़ देगी। तुम एक अच्छे इन्सान कहलाओगे। सभी लोग तुम्हारा आदर करेंगे।

आचार्य की वातों को सुनकर उस शरावी की आंखें खुल गईं। आचार्य का उपदेश सुनकर उसने सदा के लिए शराव पीना छोड़ दिया। उसका विगड़ा हुआ स्वास्थ्य ठीक हो गया। सभी लोग अव उसका सम्मान करने लगे।

भाषा की शिष्टता

एक था कोई राजा। उसे शिकार खेलने का बड़ा चाव था। अपने दरबारियों, संगी-साथियों को साथ लेकर महीने में एक-आध बार अवश्य जंगल को शिकार खेलने के लिये जाता। उसके साथ सेवक, मन्त्री आदि भी जाते। जंगल को प्रस्थान करने से पहले ढोल-नगाड़े बजते। लोगों में उत्साह उमड़ पड़ता।

एक दिन राजा एक हिरन का पीछा करते-करते काफी दूर निकल गया। जंगल घना था। मन्त्री, नौकर-चाकर सब पीछे छूट गए। सांझ ढलने लगी। राजा का कोई पता न चला। सभी चिन्तित थे। राजा की खोज में वे निकल पड़े। सबसे आगे राजा के सेवक चले। उन्हें जंगल में एक संन्यासी की कुटिया दीख पड़ी। वे आगे बढ़े। कुटिया में जाकर देखा एक वृद्ध, अन्धा संन्यासी बैठा है। ईश्वर का कोई भजन गुनगुना रहा है।

'अरे सन्यासी तूने इस मार्ग से किसी राजा को जाते तो नहीं देखा?'—एक सेवक ने बड़ी रूखी आवाज में पूछा।

संन्यासी बोला—'नहीं, मैंने तो किसी भी राजा को इधर से गुजरते हुए नहीं देखा।'

सन्यासी का उत्तर सुनकर सेवकों ने सोचा सन्यासी ने तो राजा को देखा नहीं। चलो आगे चलकर राजा का पता करते हैं। वे आगे निकल गए। थोड़ी देर के बाद राजा का मन्त्री भी राजा को ढूंढ़ता-ढूंढ़ता उस स्थान पर आ निकला। उसने भी सन्यासी को देखा। मन्त्री भी सन्यासी के पास आया और बोला—'बाबा! तुमने इस मार्ग से हमारे राजा को जाते तो नहीं देखा?'

'नहीं! बिल्कुल नहीं।'—साधु ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

सन्यासी का उत्तर सुनकर उसे बड़ी निराशा हुई। वह भी आगे चल दिया। संयोगवश भटकते-भटकते राजा भी सन्यासी की कुटिया के पास आ निकला। कुटिया को देख राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा रात हो चुकी है। आज आश्रय तो मिल गया। सुबह होते ही चला जाऊंगा। अब मैं जंगल में भटकने से बच गया। अवश्य इस कुटिया में कोई न कोई सन्यासी तो रहता ही होगा। चलो अन्दर जाकर देखता हूं। राजा कुटिया के दरवाजे के पास पहुंचा तो क्या देखता है कि एक वृद्ध सन्यासी तपस्या में लीन है। आंखों की ज्योति खो चुका है। उसके चेहरे पर काफी तेज है।

राजा बड़े आदर भाव से बोला—'साधु महाराज! मैं अपने संगी-साथियों के साथ शिकार खेलने के लिए आया था। शिकार खेलते-खेलते उनसे बिछुड़ गया। क्या आपने इधर से आदमी जाते तो नहीं देखे?'

सन्यासी बोला—'बैठिये राजन! आप थके होंगे। थोड़ा विश्राम तो कर लीजिये। हां, थोड़ी देर पहले आप का सेवक और उसके बाद आपका मन्त्री आपको ढूंढ़ते हुए इधर से आ निकले थे।'

सन्यासी की बात सुनकर राजा के अचरज का कोई ठिकाना

न रहा। राजा सोच रहा था कि इस दृष्टिविहीन संन्यासी को कैसे पता चला कि मैं राजा हूं, और इससे पहले जाने वाले मन्त्री और सेवक हैं।

राजा संन्यासी से बोला—'महाराज! मुझे क्षमा करें। आपकी आँखों में ज्योति मालूम नहीं होती फिर भी आपने कैसे पहचाना कि मैं राजा हूं और मुझसे पहले आने वाले मन्त्री और सेवक थे। आपका हम सब के साथ पहले परिचय भी तो नहीं था।'

अब साधु बड़े शान्त स्वर में बोला—'राजन! मनुष्य की पहचान उसकी वाणी और भाषा की शिष्टता से हो सकती है, जैसे कौवे और कोयल का स्वर सुनने से पता चल जाता है कि कौन कौवा है और कौन कोयल। आपके सेवक ने मुझे 'तू' कहकर पूछा। मन्त्री ने 'तुम' कहकर और आपने मुझे 'साधु महाराज' कहकर पूछा। भाषा की शिष्टता से मैं समझ गया कि सेवक कौन है, मन्त्री कौन है और राजा कौन है।'

राजा को भी बोध हो गया कि भाषा की शिष्टता से मनुष्य पहचाना जाता है। रात को राजा साधु महाराज के पास रहा। प्रातः होते ही अपने महलों को चल दिया।

—०—

परिश्रम की कमाई

गोलकुण्डा का शासक था कुतुवशाह। वह वड़ा ही धर्मात्मा तथा अपने परिश्रम की कमाई पर निर्वाह करने वाला था। वह वड़े परिश्रम से कुरान शरीफ की आयतों की नकल करता और उन्हें वेचकर पैसे कमाता। उस पैसे को वह तिजोरी में रखता और अपने जोवन-निर्वाह के लिए खर्च करता। वह गुणवान व्यक्तियों का आदर-सत्कार करता। देश-विदेश के वहुत से कर्मचारी उसके दरवार में नियुक्त थे। उसने एक विदेशी रसोइए की प्रशंसा सुनी कि वह वड़ी ही उत्तम एवं स्वादिष्ट रसोई तैयार करता है। वस फिर क्या था। उसने उसे वुला भेजा और उसे अपनी पाकशाला में रख लिया।

उस रसोइए को कुतुवशाह के पास रहते हुए सात-आठ वर्ष हो गए। उसकी कन्या का जव विवाहोत्सव आया तो वह अपने घर जाने को तैयार हुआ। दरवारियों को जव पता चला कि रसोइया अपनी कन्या का विवाह करने जा रहा है तो उन्होंने उसकी कन्या को वहुत से उपहार दिए। वह रसोइया अव कुतुव-शाह के पास गया और वड़े विनीत स्वर में वोला—'हुजूर, मेरी कन्या का विवाह है अतः मुझे एक महीने की छुट्टी दी जाए।'

रसोइए की बात सुनकर, कुतुबशाह ने उसी समय अपनी बेगम को बुलाया और कहा 'तुम मेरी तिजोरी में से ताम्बे के के बीस पैसे इस रसोइए को लाकर दो। इसकी कन्या का विवाह है। यह अपने घर जा रहा है।'

बेगम झट बीस ताम्बे के पैसे ले आई और रसोईए के हाथ थमा दिए। रसोइया पैसा लेकर विदा हुआ। आश्चर्य और दुःख के भावों का उसके चेहरे पर उतार-चढ़ाव होने लगा। क्योंकि उसने कुतुबशाह से बहुत से धन की आशा रखी थी। अब वह चुपचाप अपनी यात्रा पर रवाना हुआ। उसने समुद्री-मार्ग से घर जाना था अतः समुद्र के किनारे पहुंच गया। उस दिन जाने वाला समुद्री जहाज निकल चुका था। दूसरा जहाज अगले दिन प्रातः ही जाना था इसलिए रसोईए ने वहीं पर एक सराय में डेरा लगा लिया। सायकाल के समय वह टहलने के लिए समुद्र-तट पर निकला।

वह समुद्र के किनारे पर टहल रहा था और बार-बार उसके मन-मस्तिष्क में कुतुबशाह द्वारा दिए गए पैसों की बात कौंध रही थी। उसने सोचा क्यों न इन पैसों को समुद्र में फेंक दूं। इनसे मेरा क्या बनेगा। अभी तक वह इसी अधेड़बुन में था कि एक अनार बेचने वाला आ गया। उस अनार बेचने वाले ने उस रसोइए के पास आकर कहा कि वह अनार खरीद ले। रसोइए ने सोचा समुद्र में पैसे फेंक कर क्या करूंगा, यह अनार बेचने वाला तो प्रसन्न हो जाएगा। उसने वे बीस पैसे अनार बेचने वाले के हाथ थमा दिए। अनार बेचने वाले ने अनारों की टोकरी रसोइए के हाथ थमा दी और घर की राह ली।

रात को रसोइए ने वह टोकरी अपने पास रखी और प्रातः जाने वाले जहाज की एक सीट के नीचे रख दी। उसमें से उसने एक भी अनार न खाया। बहुत से यात्री उस जहाज पर चढ़ने लगे। एक सेठ भी सपरिवार यात्रा पर था। उसकी पत्नी, पुत्र और

पुत्र वधु भी साथ थे। सेठ का वह इकलौता पुत्र बीमार हो गया। उसकी दशा विगड़ने लगी। सेठ जी चिन्तित हुए। उस जहाज में कोई चिकित्सक भी तो न था। जहाज में बैठे लोग आपस में बातें करने लगे।

उनमें से एक ने कहा -'यदि इसे इस समय अनार दिया जाता तो यह झट ठीक हो जाता।'

दूसरे ने कहा—'जहाज तो समुद्र के मध्य में है अनार कहां से आए ?'

सेठ ने कहा—'यदि इस समय मुझे जितने अनार मिलें उन्हें खरीद लूं और एक-एक अनार का एक-एक हजार रुपये दे दूं।'

लोगों की बातें और सेठ जी के शब्द उस रसोइए के कान में भी पड़े। उसे अनारों की टोकरी का ख्याल आया। उसने वह टोकरी जाकर सेठ जी के पास रख दी। जब टोकरी को खोला गया तो उसमें से केवल पन्द्रह अनार ही ठीक थे। बाकी के सड़ चुके थे। सेठ ने उन पन्द्रह अनारों के पन्द्रह हजार रुपये प्रसन्न होकर रसोइए को दिए। सेठ का लड़का भी झट ठीक हो गया। उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार न रहा।

पन्द्रह हजार रुपये की धनराशि पाकर रसोइया मन ही मन इतरा रहा था। उसने घर जाकर अपनी कन्या का विवाह धूम-धाम से किया। विवाहोपरान्त वह फिर कुतुबशाह के पास आ गया। कुतुबशाह को उसने सारी घटना सुना दी। कुतुबशाह ने बड़े आश्चर्य से कहा—'तुम्हें तो उन बीस पैसों के बदले बीस हजार रुपये मिलने चाहिए थे। बात क्या बनी ?'

बेगम को बुलाकर सारी बात की छान-बीन की गई। बेगम ने कहा –'महाराज ! आपकी तिजोरी में उस समय केवल ताम्बे

के पन्द्रह पैसे ही थे। पांच पैसे तो मैंने किसी दूसरी तिजोरी में से निकाल कर बीस पैसे पूरे किए थे।'

बादशाह कुतुबशाह ने कहा—'तब ठीक है, मेरी परिश्रम की कमाई के केवल पन्द्रह पैसे ही थे। तभी तो पन्द्रह हजार रुपये मिले।'

बादशाह की बातों को सुनकर उस रसोइए को बोध प्राप्त हो गया कि परिश्रम की कमाई अनन्त गुणा फलदायक होती है।

—o—

महात्मा का उपदेश

एक थे कोई महात्मा। नगर-नगर, गांव-गाँव घूमकर लोगों को उपदेश देते। एक दिन भ्रमण करते वे किसी नगर में पहुंचे। रात अधिक हो चुकी थी। राजा का महल रंग-बिरंगे प्रकाश से जगमगा रहा था। वे उसी ओर बढ़ चले। वहां पर जाकर देखा कि महल के बरामदे खाली पड़े हैं। महात्मा ने विचार किया क्यों न बरामदे में एक तरफ लेटकर रात गुजारी जाए।

जब महात्मा महल के मुख्य द्वार के मार्ग से बरामदे में प्रविष्ट होने लगे तो द्वारपाल ने ललकारते हुए कहा--'अरे! यह कोई सराय नहीं। यह तो राजा का महल है। कहीं सराय में जाकर ठहरो।'

महात्मा थे बड़े निडर। उन्होंने द्वारपाल की कोई परवाह नहीं की और बरामदे में जाकर डरा लगा लिया। अब द्वारपाल ने जाकर राजा से शिकायत की। राजा आया और बड़े विनीत स्वर में बोला—महात्मन्! कहीं दूसरी जगह चले जाओ यह तो मेरा निजी महल है, सराय नहीं।

महात्मा बोले—'राजन्! सराय किसे कहते हैं?'

राजा ने कहा—'महात्मन्! सराय उसे कहते हैं जहां दो-चार दिन विश्राम करके यात्री अपने घर को चला जाता है।'

तब महात्मा बोले—'क्या आप का इस महल में निवास

स्थाई है ? क्या आप सदा के लिए यहीं रहोगे ?'

राजा ने उत्तर दिया—'नहीं महाराज ! दुनिया में सदा कौन रह पाया है। यह दुनिया तो आनी जानी है।'

महात्मा चकित होकर पूछने लगे—'राजन ! दुनिया आना-जाना क्या है ? पहले इस महल में कौन रहता था ?'

राजा ने कहा 'पहले मेरे परदादा इस महल में रहे उसके बाद मेरे दादा। दादा जी के स्वर्ग सिधारने पर मेरे पिता जी इस महल में रहते रहे। उनके पश्चात् मैं रहता हूं।'

महात्मा बोले - 'अरे राजन् ! आप तो भ्रम में हैं। तुम्हारे परदादा ने बड़े चाव से यह महल तैयार करवाया। कुछ दिनों के पश्चात् वे इसे छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए उसके पश्चात् दादा रहे। दादा भी चलते बने। तो तुम्हारे पिता जो यहां आ गए। पिता जी के बाद तुम्हारी बारी आ गई। यहां पर स्थाई निवास तो किसी का रहा नहीं। तब यह सराय नहीं तो और क्या है ? राजा को महात्मा की बातों द्वारा सच्चा बोध प्राप्त हुआ। व्यर्थ का अहंकार चूर-चूर हो गया। उन्होंने महात्मा के चरण पकड़ लिए।

माँ की बातें

राजा अजातशत्रु पहले बड़े ही अत्याचारी थे। प्रजा पर मन माने अत्याचार करते। उसने अपने पिता को भी मुगल बादशाह की तरह कैद में डाल रखा था। प्रजा और पड़ौसी देशों के राजा उससे भयभीत थे। उसका एक राजकुमार था जो उसे बड़ा प्रिय था। एक बार राजकुमार के अंगूठे में पाक पड़ गई। असहनीय पीड़ा से राजकुमार बिलख-बिलख कर रोने लगे। राजा भी उसके दुःख से पीड़ित था। उसने योग्य चिकित्सक बुलाए।

चिकित्सकों ने राजा को कहा—'राजन ! यदि शल्य-चिकित्सा द्वारा पाक बाहर निकाल दी जाए तो राजकुमार को चैन मिल सकता है। एक व्यक्ति ने सुझाव दिया कि चीर-फाड़ की अपेक्षा मुंह से चूस कर पाक बाहर निकाल दी जाए तो अच्छा रहेगा। राजकुमार को भी अधिक कष्ट न होगा। बादशाह को राजकुमार के साथ बड़ा प्रेम था। वह स्वयं ही चूस-चूस कर पाक को बाहर निकालने लगे। उसके इस कृत्य को देखकर बादशाह की मां हंसने लगी। बादशाह को मां की हंसी अखरने लगी। उसने पूछा—'माँ ! तुम क्यों हंस रही हो ?

मां ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया 'बेटा ! जब तुम इस राजकुमार की आयु के थे तो तुम्हारे अंगूठे में भी इसी प्रकार पाक पड़ गई थी। तुम्हारे पिता ने भी स्नेह के वशीभूत होकर

तुम्हारे पाक को अपने मुख से चूसकर तुम्हारा कष्ट दूर किया था। तुम्हारे साथ इतना स्नेह करने वाला पिता आज तुम्हारी आज्ञा से ही जेल की कोठरी में वन्द है। मुझे इस वात का भय है कि जिस पुत्र के लिए तुम इतना कष्ट उठा रहे हो कहीं वड़ा होकर यह अपने पिता की तरह आपको जेल में न डाल दे।'

मां की वातों ने राजा की आंखें खोल दीं। वह अपने कुकर्मों पर पश्चाताप करने लगा। फूट-फूट कर रोने लगा। उसके हृदय में करुणा का संचार होने लगा। उसने अपने पिता सहित सभी कैदी जेल से मुक्त कर दिए। उनसे क्षमा मांगी। सभी के साथ प्यार का हाथ वढ़ाया। बादशाह के वदले हुए व्यवहार से सभी शत्रु राजा के मित्र वन गए। फिर वह वादशाह अजातशत्रु कहलाया।

—०—

श्रद्धा भाव

महात्मा बुद्ध भ्रमण करते-करते एक बार राजा बिम्बिसार के राजमहल में पहुंचे। राजा और प्रजा ने उनका भव्य स्वागत किया। उन्हें राजसिंहासन पर बिठाया। महात्मा बुद्ध ने वहां कई दिनों तक अपने प्रवचनों द्वारा अमृत वर्षा की। एक दिन उन्होंने लोगों को समझाते हुए कहा—'कल हम यहां से दूसरे नगर को प्रस्थान करेंगे।'

लोगों ने जब महात्मा बुद्ध से ऐसा सुना तो वे उदास होने लगे क्योंकि महात्मा बुद्ध ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व और प्रवचनों द्वारा उन लोगों का हृदय जीत लिया था। इसलिए लोगों के लिए उनका विछोह असहनीय था।

दूसरे दिन बहुत से लोग महात्मा बुद्ध के चरणों में अमूल्य वस्तुओं को भेंट करने लगे। महात्मा बुद्ध हाथ के स्पर्शमात्र से उन वस्तुओं को स्वीकार करके वापिस लौटा रहे थे। उसी समय एक वृद्धा अपने हाथ में एक आम लेकर आई जिसका आधा भाग वह खा चुकी थी। महात्मा बुद्ध के पास आकर वह वृद्धा बड़े विनीत स्वर में बोली—'प्रभु आपकी सेवा के लिए मेरे पास तनिक भी धन नहीं है। मेरे पास तो यही आधा आम है। आप इसे स्वीकार करें।'

महात्मा बुद्ध उस वृद्धा की बात सुनकर मुस्कराए। चेहरे पर नई आभा बिखर आई। उठ खड़े हुए और दोनों हाथ बढ़ाकर उसकी भेंट को बड़े प्रेम से स्वीकार कर लिया। लोग यह सब तमाशा देख रहे थे। वे राजा बिम्बिसार सहित आश्चर्यचकित रह गए। उस समय राजा से रहा न गया वे महात्मा बुद्ध से बोले— 'प्रभु आपने वृद्धा के आधे जुठे आम को दोनों हाथ आगे बढ़ाकर स्वीकार करके अपने पास रख लिया। दूसरे लोग जो भेंट लेकर आए उन्हें केवल हाथ से ही स्पर्श करके वापिस लौटा दिया।'

महात्मा बुद्ध बड़े शान्त भाव से बोले—'राजन ! आप लोग जो मुझे भेंट दे रहे थे उनमें अहंकार भाव था कि हम अमूल्य वस्तुएं भेंट कर रहें हैं। लेकिन इस वृद्धा ने जो मुझे भेंट दी है उसमें मुझे अपार श्रद्धाभाव दिखाई दे रहा है। इसलिए मैंने इसकी भेंट को दोनों हाथ बढ़ाकर प्रसन्नता से ले लिया।'

राजा बिम्बिसार, महात्मा बुद्ध के वचनों को सुनकर चुप हो गए। सभी उपस्थित लोग उस वृद्धा के भाग्य की सराहना करने लगे।

—०—

जैसा अन्न वैसा मन

एक महात्मा थे। वे अधिकतर राज दरबारों में जाकर राजाओं-महाराजाओं को धर्मोपदेश दिया करते। इसलिए लोग उन्हें राजऋषि कहकर पुकारते। एक दिन की बात है कि वह महात्मा एक राजा के यहां उसके राजदरबार में पहुंचे। राजा ने उनका खुब आदर-सत्कार किया। नाना प्रकार के व्यंजनों से युक्त भोजन खिलाया। उन्हें लेटने के लिए एक कक्ष में बिस्तर लगा दिया। वह कक्ष खुब सजा-धजा था। महात्मा जी उस कमरे में अकेले लेट गए। उनकी दृष्टि खूंटी पर टंगे एक मोतियों के हार पर पड़ी। उस हार को देखते ही महात्मा के मन में लोभ का विकार प्रबल हो उठा। उन्होंने लोभ के वशीभूत होकर वह हार उतारा और अपनी झोली में डाल लिया।

महात्मा ने उस हार को लेकर जंगल की राह ली और अपनी कुटिया में जा पहुंचे। पीछे से हार के गायब होने का समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया। नौकरों से पूछ-ताछ की जाने लगी। महात्मा पर तो राजा को तनिक भी सन्देह न

था। नौकर बेचारे इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ थे।

इस प्रकार छानबीन करते-करते एक रात और एक दिन बीत गया। हार का कोई भी पता न चला। उधर महात्मा के मन का विकार भी दूर हो गया। उन्हें अपने इस कुकृत्य पर बड़ा पश्चाताप होने लगा। महात्मा ने अपना अपराध स्वीकार करना ही श्रेष्ठ समझा। वे तुरन्त राजदरबार में गए। अपनी झोली में से हार निकाला और राजा के सामने रखते हुए बोले—'राजन! मैं अपराधी हूं। कल मैं इस हार को आपके कक्ष में से चुराकर ले गया था। मुझ से बड़ी भारी भूल हो गई थी। लोभ के वशीभूत होकर मेरी बुद्धि मारी गई थी। और मुझसे ऐसा अपराध हो गया। मैं दौड़ा-दौड़ा अपनी कुटिया से इसलिए आया हूं कि कहीं मुझ नीच चोर के स्थान पर किसी निर्दोष व्यक्ति को राजा दण्ड न दे रहे हों।'

राजा महात्मा की बात को सुनकर अवाक् रह गए। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि महात्मा ऐसा काम भी कर सकते हैं। राजा ने कहा—'महात्मन्! आप इस हार को ले जाइए। यह बात मुझे असम्भव मालूम होती है। हो सकता है आप किसी चोर को बचाने के लिए अपने ऊपर इस अपराध को ले रहे हैं। क्योंकि सन्तों का हृदय झट दया से द्रवीभूत हो उठता है।

महात्मा बोले 'मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं। सचमुच मैं ही इस हार को ले गया था। मेरे मन में हार को देखकर लोभ का भाव प्रबल हो उठा था। मैं चुपके से उसे अपनी झोली में डालकर अपनी कुटिया में ले गया था। रात को मुझे दस्त लग गए। आप के यहां खाया हुआ अन्न बाहर निकल गया। पता नहीं वह अन्न कैसा था? जो आप ने मुझे खिलाया था। उस अन्न दोष के कारण ही मेरे मन को लोभ ने घेर लिया। अब वह अन्न मल के

रूप में पूरी तरह बाहर निकल गया है। मेरा मन भी निर्मल हो गया है।

राजा ने भण्डारी को बुला कर उस अन्न के विषय में पूछ-ताछ की। भण्डारी ने बताया कि राजन एक दिन एक चोर ने किसी के घर चोरी लगा दी और चावल चुराए चोर पकड़ा गया। उसे दण्ड मिला। चावलों का मालिक आया नहीं। वे चावल आपके अन्न-भण्डार में पड़े रहे। कल उन्हीं चावलों में से पकाकर महात्मा को खिलाए थे।'

महात्मा ने राजा को समझाते हुए कहा – 'राजन् शास्त्रों में राज अन्न का भक्षण करना निषेध ठहराया है। जैसा मैंने अन्न खाया वैसा ही मेरा मन बन गया। यदि मैं इस प्रकार चोरी के अन्न को न खाता तो मेरे मन पर कभी भी दूषित प्रभाव न पड़ता। कभी पापाचार पैदा न होता। मैं पापवृत्ति से बचा रहता।'

इतना कहकर महात्मा ने उस हार को लौटा कर जगल की राह ली। वे जाकर अपनी कुटिया में रहने लगे। कभी भी राज-अन्न न खाने का संकल्प किया। कन्दमूलों से निर्वाह करने लगे।

— रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'
पी० ओ० : सिहाल
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा 176053

सच्चा मानव

एक था कोई ब्राह्मण। बाल्यावस्था में ही दुर्भाग्य से पितृ-सुख से वंचित हो गया। विद्या प्राप्त न कर सका। बनारस के दशाश्वमेद्य घाट पर एक फूल बेचने वाले के पास नौकरी कर ली। वहाँ पर एक शिव-मन्दिर था। शिव मन्दिर की ड्योढी तक वह प्रतिदिन जाता। सुबह सांय नियमपूर्वक दर्शन करता। शिव महादेव की प्रतिमा को उसने अपने हृदय में बसा लिया। अटूट श्रद्धा उसके मन में जागृत हो उठी। एक दिन उसने दृढ़-निश्चय किया कि वह शिव महादेव के मन्दिर के आंतरिक भाग में जाकर दर्शन करेगा।

जो कोई भी भक्त शिवमन्दिर में आता कुछ-न-कुछ चढ़ावा अवश्य लाता। मन्दिर का पुजारी ऐसे भक्तों पर प्रसन्न रहता उनका सम्मान भी करता। उस ब्राह्मण को खाली हाथ आए देखकर पुजारी की भवें तन गईं। उसने उसे न तिलक लगाया और न ही प्रसाद दिया। झिड़कियां देकर मन्दिर के बाहर निकाल दिया। उस ब्राह्मण ने पुजारी की झिड़कियों को प्रभु का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लिया। प्रत्युतर में कुछ भी न कहा।

संयोगवश कुछ दिनों के उपरान्त पुजारी का देहान्त हो गया। एक धार्मिक प्रवृति के जिस धनाढ्य पुरुष ने मन्दिर का निर्माण करवाया था। उसने नए पुजारी की नियुक्ति करनी थी।

मन्दिर के सामने वाली हवेली के छज्जे पर सेठ जी धूप भी सेकते और मन्दिर में आने जाने वाले भक्तों को बड़े गौर से देखते पुजारी के देहान्त के पश्चात उस ब्राह्मण का मन्दिर के बाहरी भाग में आना जाना नित्यकर्म बन चुका था। सेठ जी ने अपना नौकर भेजकर एक दिन उसे बुला भेजा। वह बेचारा भयभीत हुआ और सहमता हुआ सेठ जी के पास पहुंच गया।

सेठ ने बड़े प्रेम और मधुर वाणी से पूछा--'तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्या करते हो? मन्दिर के भीतरी भाग में जाकर तुम्हें कभी प्रार्थना करते नहीं देखा।'

उस ब्राह्मण ने अपना पूरा परिचय सेठ जी को दिया और पुजारी द्वारा जो उसे प्रभु का प्रसाद उस दिन मिला था वह सारा किस्सा उसने कह सुनाया। सेठ ने सोचा-विचारा और उससे बोले--'मैं तुम्हें इस मन्दिर का पुजारी नियुक्त करना चाहता हूं क्योंकि पहले वाले पुजारी स्वर्ग सिधार गए हैं।'

वह ब्राह्मण बोला—'महाराज। हूं तो मैं ब्राह्मण पर पढ़ा लिखा कम हूं। विद्वान नहीं हूं। साधारण पूजा-पाठ ही कर सकता हूं।' सेठ बोले--मुझे अधिक पढ़े लिखे पुजारी की अपेक्षा सच्चे मानव की आवश्यकता है। तुम मुझे एक सच्चे मानव मालूम पढ़ते हो।'

'वह कैसे सेठ जी?' ब्राह्मण ने कहा।

सेठ जी बोले मैंने तुम्हारी परख कर ली है। तुम एक सच्चे मानव हो? मानवता तुम में कूट कूट कर भरी है। प्राणी मात्र की सेवा करना तुम अपना कर्तव्य समझते हो। मन्दिर की डयोड़ी के बाहर जो प्रांगण है उसमें एक पत्थर उखड़ कर वहीं पड़ा था। आते जाते भक्तों को नित्य ठोकर लगती। तुमने उसे अच्छी तरह गाड़कर एक पुण्य काम किया है। मैंने यह सब अपनी आंखों से देखा है। तब ही मैंने तुम्हें पुजारी नियुक्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

वह ब्राह्मण सेठ जी के आग्रह को न टाल सका वह सच्चा मानव मन्दिर का पुजारी बनकर मन्दिर की सेवा करने लगा। भक्तों की अटूट श्रद्धा मन्दिर की प्रतिमा के अतिरिक्त उस सच्चे मानव के प्रति भी जागृत हो उठी।

सच्चा साधक

गंगा नदी के तट पर एक योगी महाराज जी रहा करते थे। उन्होंने अपने रहने के लिए बड़ा सुन्दर आश्रम बना रखा था। विविध प्रकार के फूल उनके आश्रम की शोभा को चार चांद लगा देते। फलों के बहुत से पेड़ भी उस आश्रम के इर्द-गिर्द थे। योगी महाराज नियमित रूप से जप तप करते। विविध प्रकार के आसन भी लगाते। अनेक प्रकार की यौगिक साधनाओं में वे बड़े प्रवीण थे। समय बीतने लगा। योगी महाराज को अपनी साधना पर अहंकार होने लगा। वे बड़े-बड़े साधकों को अपने सामने तुच्छ ही समझने लगे।

योगी महाराज के आश्रम के सामने एक नाविक रहा करता था। वह नाव चलाकर अपने परिवार का भरण-पोषण किया करता। वर्षा-शीत-धूप सभी मौसमों में वह नाव चलाया करता। बड़ी सावधानी से नाव चलाकर लोगों को नदी पार करवाता। कभी-कभार नाविक भी योगी के आश्रम में चला जाता। योगी महाराज हर बार उसे यही उपदेश देते—'अरे मूर्ख। तू अपना जन्म क्यों व्यर्थ गंवाता है। तू न तो कोई जप करता है न कोई तप। तूने सारी आयु लोगों को इस नाव द्वारा आर-पार ढोने में बिता दी।

वह नाविक योगी महाराज के उपदेश को बड़े ध्यान से सुनता। वह भली प्रकार जानता था कि योगी ने तपस्या द्वारा एक

सिद्धि प्राप्त की है। उस सिद्धि द्वारा वह जल पर चल सकता है। इस चमत्कार को वह कई वार लोगों को दिखलाता भी था। तभी तो लोग उस योगी की वड़ी प्रशंसा करते हैं।

एक वार वरसात के मौसम में खूव वर्षा हुई। गंगा नदी में भयंकर वाढ़ आई। उस वाढ़ ने गगा तट को दूर-दूर तक काट डाला। योगी महाराज के आश्रम को भी वहा कर ले जाने लगी तो योगी महाराज जोर-जोर से नाविक को पुकारने लगा। देखते ही देखते योगी को भी गंगा की वाढ़ ने अपने में समेट लिया और वहा कर ले जाने लगी। योगी उस नाविक को वार-वार पुकारे जा रहा था वचाओ। वचाओ।।···मुझे वचाओ।

नाविक ने देखा कि योगी महाराज वाढ़ के हिचकोलों में वहे जा रहे हैं। नाविक तैरकर शीघ्रता से योगी के पास पहुंचा उसे अपनी पीठ पर उठाया और तट पर लाकर एक सुरक्षित स्थान पर रख दिया। जब योगी को होश आया तो वे नाविक को धन्य-वाद करने लगे।

नाविक वोला—'महात्मन्! आप तो जल पर भी चल सकते हैं। कई बार आप लोगों को यह चमत्कार दिखलाते भी हैं। फिर आप कैसे डूवने लगे।'

योगी वोले—'मैं तुम्हें आज दिन तक व्यर्थ ही उपदेश देता रहा। इस भयंकर वाढ़ में मेरी सिद्धि किसी काम की न रही। मैं व्यर्थ ही अपने मन में अहंकार रखता था। सच्ची सिद्धि वही है जिससे हम दूसरों का उपकार कर पायें। सिद्धि का अर्थ लोगों की अपार भीड़ एकत्रित करके चमत्कार दिखाना नहीं। मैं तो अपनी सिद्धि का चमत्कार दिखलाकर लोगों का व्यर्थ ही प्रशंसक वना रहा। समय आने पर मैं अपनी रक्षा भी न कर सका। सच्चे

साधक तो तुम हो जो दूसरों का भला करते हो। मन में तनिक अहंकार नहीं रखते।

उस दिन से लेकर योगी महाराज ने सिद्धि का चमत्कार लोगों को दिखलाने की अपेक्षा यथा साध्य दूसरों की सेवा करना श्रेष्ठ समझा।

सत्य की करामात

किसी देश में एक सेठ जी रहा करते थे। उनका चन्दन का व्यापार था। जब व्यापार में अधिक लाभ होने लगा तो सेठ जी में परोपकार की भावना जागृत हो उठी। वह दीन-दुःखी लोगों की अन्न-धन से सहायता करने लगा। साधु-सेवा और सत्संग से उसे विशेष प्रेम हो गया। सारे लोग उस सदाचारी एवं परोपकारी सेठ का सम्मान करने लगे। उस सेठ की उस देश के राजा से भी गहरी मित्रता थी। सेठ और राजा में समभाव होने से उनकी मुलाकात अक्सर सप्ताह में दो-तीन बार अवश्य हो जाती। कभी राजा सेठ के पास तो कभी सेठ राजा के पास पहुंच जाता। इस तरह उनके दिन बड़े मजे से कट रहे थे।

भाग्य की विडम्बना, व्यापार मन्द पड़ गया। चन्दन की बिक्री पहले से बहुत कम हो गई। सेठ जी ने मुनीम से एक दिन पूछा—'मुनीम जी! आजकल चन्दन के बाजार का क्या हाल है? मालूम होता है बाजार में मन्दा पड़ गया है।'

मुनीम ने कहा—'सेठ जी! आप का कहना ठीक है। आजकल बाजार में चन्दन की बिक्री का भारी मन्दा है। हमारे गोदाम में आजकल कई मन चंदन पड़ा है। यदि बाजार में इसी तरह मन्दा

रहा तो हमारे गोदाम में पड़े-पड़े चंदन को घुन लग जाएगा। करोड़ों की रकम मिट्टी में मिल जाएगी। उसको बाहर निकालने का अवश्य कोई उपाय ढूंढ़ना चाहिए।'

मुनीम से ऐसी बात को सुनकर सेठ जी को सारी रात नींद न आई वे करवटें बदलते रहे। मन की बेचैनी बढ़ती गई। सेठजी इसी सोच में डूबे रहे कि किस ढंग से चदन को बेचा जाए। इसी उधड़-बुन में रात बीत गई। प्रातः सेठ जी के मन में एक विचार उठा कि यदि राजा स्वर्ग सिधार जाए तो बहुत सा चन्दन बिक सकता है। क्योंकि राजा का दाह-संस्कार तो केवल चन्दन की लकड़ी से ही होगा। राजा की सेठ के साथ दा शरीर एक प्राण वाली मित्रता थी। उधर सेठ जी के विचारों का असर राजा के मन पर भी पड़ा। अपने नित्यकर्म से निवृत होकर बोझिल मन से सेठ जी राजा के यहां पहुंच गए। उधर राजा के मन में भी बड़ा उद्वेग उठा। सेठ जी को देखकर प्रसन्न होने वाला राजा आज बड़ा बेचैन था। वह सेठ जो के साथ आंख तक भी मिलाना न चाहता था। सेठ जी भी उस दिन राजा के यहां थोड़ी देर रुके और फिर वापिस अपने घर को चले आए।

सेठ जी के चले जाने के बाद राजा अपने मन की बेचैनी का कारण ढूंढ़ने लगा। उसे कोई कारण न सूझा तो दूसरे दिन सेठ जी को बुला भेजा। सेठ जी राजा के पास आए और बातें करने लग पड़े। राजा ने सेठ जी से कहा—'सेठ जी! मैं आप के दर्शन करके बड़ी शान्ति का अनुभव करता था पर न जाने कल से मेरे मन में क्यों क्षोभ उठ रहा है। क्या आपके मन में मेरे प्रति कोई कुत्सित विचार तो नहीं? आप मेरे परम् हितैषी मित्र हैं अतः आप अपने मन की बात सच-सच मुझे बतला दें।'

सेठ को राजा से कोई द्वेष-भाव तो था नहीं, जो कुत्सित विचार उसके मन में उठा था। वह भी राजा की बातों को सुन-

कर जाता रहा। उसने सारी कहानी सच-सच बतला दी कि क्यों उसके मन में ऐसे भाव उठ थे। राजा को सेठ का ऐसा निष्कपट व्यवहार अच्छा लगा। उसने सेठ के मुंह से साफ-साफ बात सुनकर दुःख नहीं परन्तु शान्ति का अनुभव किया। उसके सत्य भाषण से राजा बड़ा प्रभावित हुआ। उसके सत्य भाषण से राजा बड़ा प्रभावित हुआ। राजा ने अपने मन्त्री को हुक्म दिया कि वह राजकोष के धन से सेठ जी का सारा चन्दन खरीद ले।

बस फिर क्या था दोनों के चित की मैल धुल गई। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति फिर से सुन्दर भाव जाग उठा। एक दूसरे के प्रति यह सब सत्य की ही करामात थी।

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'
पो० आ० सिहाल
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा—176053

—०—

धनवान कौन ?

बात उन दिनों की हैं जब इब्राहीम बादशाह बलख के तख्त पर आसीन था। संयोगवश उस के खजाने में कमी आ गई। वह उस कमी को पूरा करना चाहता था। उसके आगे एक समस्या खड़ी हो गई कि खजानें की कमी पूरी कैसे हो ? वह इस पक्ष में भी नहीं था कि जनता पर टैक्स लगाए जाएं। वह इस बात को पूरी तरह समझता था कि ऐसा करने से गरीब जनता में परेशानी बढ़ेगी। बादशाह को एक युक्ति सूझी उसने अपने राज्य में घोषणा करवा दी कि बादशाह अपने खजाने को बढ़ाना चाहता है जो धनवान अपनी इच्छा से धन देना चाहे, बादशाह के पास जमा करवा दे।

उस घोषणा को सुनते ही अगले दिन बादशाह के दरबार में एक अमीर व्यक्ति आ गया। उसने अपने हाथ में मोहरों की एक थैली भी ली हुई थी। उसने आकर बादशाह को सलाम की और बोला – "हुजूर ! मेरी यह तुच्छ सी भेंट है, इसे आप अपने खजाने में रख लीजिए।'

बादशाह उस धनाढ्य से भली प्रकार से परिचित था। वह था तो बड़ा अमीर पर कंजूस भी कम न था। वह धन कमाना ही

जानता था खर्च करना उसे अच्छा न लगता था। अपनी आवश्यकताओं को भी वह पूरी तरह पूरा न करता था। उस का मन धन-संग्रह में ही लगा रहता था। बादशाह ने उसे एकटक देखा और बोला— मैंने तो केवल धनवान लोगों से ही धन की मांग की है।'

वह धनवान पुरुष बड़ी विनम्रता से बोला—'हुजूर! गुस्ताखी माफ करें। मैं आप को कृपा से नगर का सबसे बड़ा धनवान हूं।'

बादशाह बड़े गम्भीर स्वर में बोला—'पर मेरी नजर में वह आदमी धनवान नहीं जो धन को जोड़-जोड़कर रखता हो। मैं तो उसे ही धनवान समझता हूं जो अपने धन को परोपकार में लगाए। वह आदमी जिसको धन-संग्रह में लालसा बनी हुई है, धनवान कैसे हो सकता है? वह आदमी जो धन का न तो स्वयं उपभोग करता है और न ही किसी निर्धन को परोपकार की भावना से अन्न-धन से सन्तुष्ट करता है, धनी कैसे कहलाएगा?' मैं तो उस व्यक्ति को धनवान समझता हूं जिसकी धन में रत्ती भर चाह नहीं और जो कुछ उसके पास है उसी में वह सन्तोष कर लेता है। यदि ऐसा व्यक्ति श्रद्धा से मुझे एक पैसा भी दे दे तो मैं उसे अपने खजाने में रख लूंगा अन्यथा नहीं।'

बादशाह की बातों को सुनकर उस व्यक्ति का सिर लज्जा से झुक गया। वह अवाक खड़ा रहा मानो उसे इस बात का बोध हो गया हो कि वह वास्तव में धनवान नहीं है।

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'
पो० आ० : सिहाल
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा
पिनकोड : 176053

स्वर्ग की प्राप्ति

एक था कोई फकीर। उसने प्रभु की खूब भक्ति की। कठिन तपस्या द्वारा वह सिद्ध पुरुष बन गया। सिद्ध पुरुष बनने के लिए पश्चात उसके मन में अहंकार-भाव जागृत हो उठा। उसके बहुत से शिष्य भी बन गए थे। वे उसकी सेवा करते। एक दिन वह अपने शिष्यों से बोला, "मुझे पालकी में बैठा कर भ्रमण करवाओ। मैं भ्रमण भी करूंगा और साथ साथ प्रवचन भी।"

शिष्यों ने पालकी तैयार की। उसमें बैठने के लिए गुरुदेव को नर्म-नर्म एक गद्दा रखा। पालको को फूलमालाओं से सुसज्जित किया। दो तीन शिष्य गुरुदेव के पास गए और बड़े विनीत स्वर में बोले—"गुरुदेव! पालको तैयार है। आप चल कर उसमें बैठिए। दूसरे शिष्य आप को प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिस दिशा को तरफ आप संकेत करेंगे हम उसी दिशा की तरफ पालकी उठा कर चल देंगे। हम भी भ्रमण का आनन्द लेंगे। आपके प्रवचनों को सुनकर लाभ उठाएंगे।"

अब वह फकीर उस पालकी में बैठ गया। अपने शिष्यों से उसने कहा—"तुम सबने एक साथ चलते-चलते कहना कि रास्ते में जो भी हमारे गुरु के दर्शन करेगा वह सीधा स्वर्ग को जाएगा।"

शिष्यों ने 'जय गुरुदेव' का नारा लगाया और पालकी को उठा लिया। शिष्यों को उस फकीर ने जिस दिशा की तरफ चलने का संकेत किया वे उसी दिशा की तरफ बढ़ चले। मार्ग में चलते-चलते सभी शिष्य बड़े ऊंचे स्वर में कह रहे थे कि जो भी हमारे गुरु के दर्शन करेगा वह सीधा स्वर्ग को जाएगा। जब ऊंची आवाज को लोग सुनते तो घरों से बाहर निकल कर देखने लगते। एक प्रभु भक्त ने जब इस प्रकार के अहंकारी और पाखंडी सिद्ध पुरुष के बारे में सुना तो उससे न रहा गया। उसने उसका अहंकार चूर-चूर करने के लिए तथा लोगों को ऐसे पाखंडी से बचाने के लिए एक चाल चली।

उस प्रभु भक्त ने एक चादर के द्वारा अपना मुख अच्छी तरह से ढांप लिया। जिस मार्ग से गुरुदेव की पालकी आ रही थी उस मार्ग में उस सिद्ध पुरुष की तरफ पीठ करके मार्ग के मध्य में बैठ गया।

जब सिद्ध पुरुष के शिष्य पालकी को लेकर वहाँ पहुंचे तो रुक गए। गुरुदेव बोले "पालकी रख दो। पहले मैं इससे पूछ तो लूं कि यह मार्ग को रोक कर इस तरह क्यों बैठा है।" शिष्यों ने पालकी रख दी। एक साथ ऊंचे स्वर में उसी बात को दोहराते हुए फिर बोल उठे कि जो भी हमारे गुरुदेव के दर्शन करेगा सीधा स्वर्ग को जाएगा। उस सिद्ध पुरुष ने उस प्रभु भक्त से पूछा— "तू मुख को ढांप कर मार्ग के मध्य में क्यों बैठा है? क्यों तूने अपना मुख ढांपा है?"

वह प्रभु भक्त बोला—"मुझे इस बात का भय है कि कहीं तुम मुझे दर्शन देकर स्वग न ले जाओ। क्या यह बात बिल्कुल सच है? रास्ते में हजारों लोगों ने आपके दर्शन किए होंगे। उनमें से धर्मी भी होंगे अधर्मी भी। पुण्य कर्म करने वाले भी होंगे और पापाचारी भी। क्या सभी आप के दर्शन करके स्वर्ग के अधिकारी बन जाएंगे?"

उस प्रभु भक्त की बातों को सुन कर वे सिद्धपुरुष निरुत्तर हो गए। उनका शरीर भय के मारे कांपने लगा। उनके शिष्य ठगे से रह गए मानो उन्होंने ऐसे पाखंडी सिद्ध पुरुष को गुरु मान कर बड़ी भारी भूल की हो।

वे प्रभु भक्त पुनः बोले—"स्वर्ग की प्राप्ति पाखण्ड से नहीं, अहंकर से भी नहीं बल्कि पुण्य कर्मों के करने से होती है।"

सच्चा धन

एक था कोई सेठ। करोड़ों की सम्पत्ति का मालिक। करोड़पति होने पर भी असन्तुष्ट रहता। उसे इससे भी अधिक सम्पत्ति की चाह रहती। वह अरबपति बनने की लालसा मन में रखे हुए था।

संयोगवश एक महात्मा उस नगर में पधारे जिस नगर में सेठ जी रहते थे। महात्मा बड़ी करनी वाले थे। जो कोई महात्मा से मांगता, महात्मा उसे देते। कई लोगों ने महात्मा के आशीर्वाद से मुंह मांगा वरदान भी पाया। इस बात का पता सेठ जी को चला। वे भी महात्मा के पास आए। उन्होंने भी महात्मा से कहा - 'महाराज मुझे इतनी सम्पत्ति चाहिए कि उसका उपयोग पहले मैं करूं फिर मेरे बच्चे, उसके पश्चात मेरे बच्चों के बच्चे। फिर भी उसका क्षय न हो।

महात्मा ने कहा—'ऐसा ही होगा पर तुम्हें एक काम करना होगा।'

'क्या' ?—सेठ ने बड़ी विनम्रता से पूछा।

महात्मा ने कहा—तुम्हारे घर के पीछे एक टूटी-फूटी झोंपड़ी है। उस झोंपड़ी में दो स्त्रियां रहती हैं। उनका परस्पर का रिश्ता सास-बहू का है। कल प्रातः ही तुम इन्हें एक दिन के खाने

जितना सौदा लेकर उनकी झोंपड़ी में दे आना। तुम अवश्य अक्षय सम्पत्ति के मालिक वन जाओगे।'

दूसरे दिन प्रात: ही सेठ जी भोजन लेकर पहुंच गए उस झोंपड़ी में। सेठ ने देखा सास नहा धोकर प्रभु के के ध्यान में मग्न है। वहू झोंपड़ी में चूल्हे-चौके के काम में लगी हुई है। झोंपड़ी की सफाई और पवित्रता को देख कर सेठ जी चकित रह गए। तव सेठ वहू से वोले—'यह लो मैं आप लोगों के लिए दाल-आटा, घी, चीनी आदि लाया हूं इसे तुम रख लो। आज इसे पका कर खा लेना।'

वहू वोली—'सेठ जी ! हमें आपके सामान की आवश्यकता नहीं है। आज के खाने भर का सामान हमारे पास रखा हुआ है।'

सेठ वोले—'फिर भी तुम इसे रख लो। यह सामान कल तुम्हारे काम आ जाएगा। इसे पका कर तुम कल खा लेना।'

वहू ने वड़ी विनम्रता से कहा—'सेठ जी हम कल के लिए संग्रह नहीं करते भगवान पर अटूट विश्वास रखते हैं। वह नित्य भेज देते हैं।'

वहू की वातें सुन कर सेठ जी दंग रह गए। सोचने लगे ये लोग कल की चिन्ता नहीं करते। प्रभु के ऊपर अटूट श्रद्धा रउते हैं, पूर्ण विश्वास करते हैं। इधर एक मैं हूं जिसके पास करोड़ों को सम्पत्ति है फिर भी मन में तनिक संतोष नहीं। महात्मा से अधिक सम्पत्ति पाने का वरदान पाने के लिए मैं गिड़गिड़ा रहा था। पोतों-पड़पोतों की चिन्ता में मेरा मन घुला जा रहा था। यह तो सव व्यर्थ है।' सेठ जी को वाध प्राप्त हुआ। मन का संशय मिट गया, निर्मल हो गया मन। अधिक सम्पत्ति प्राप्त करने की चाह जाती रही। सेठ जी परम शांति और सुख की अनुभूति लेकर उस झोंपड़ी से अपने घर की ओर लौटे।

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

आकाशवाणी की बातें

किसी महानगर के एक मुहल्ले की तंग गली में एक दीन भिखारी बैठा रहता। आने-जाने वाले लोगों से भिक्षा मांगा करता। तन पर चिथड़े पहने रहता। मैल-कुचैल उसके शरीर पर जमी रहती। कोई दयावान उसे पैसा-धेला दे देता तो उसका धन्यवाद कर रख लेता। वर्षों तक यही क्रम चलता रहा। भिखारी बूढ़ा हो चला। दांत गिर गए। आँखों की ज्योति भी खो बैठा। शरीर जर्जर हो गया। एक दिन इस संसार को छोड़ स्वर्ग सिधार गया। मुहल्ले वालों ने उसका दाह-संस्कार भी कर दिया।

एक दिन मुहल्ले वालों ने सोचा जिस स्थान पर वह मैले-कुचैले शरीर वाला भिखारी बैठता था वह स्थान अपवित्र है। दुर्गन्धयुक्त है। क्यों न थोड़ी सी मिट्टी खोदकर परे हटा दी जाए। फावड़ा लेकर मुहल्ले के एक दो नवयुवकों ने वहां की मिट्टी को खोदा उसे परे हटाने लगे तो उसमें से अक्षय धन का पात्र निकाला। यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। सारे मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। वे बड़े विस्मय होकर उस धन के पात्र को देख रहे थे। आपस में बातें करने लगे।

एक बोला—'बेचारा भिखारी सारी आयु दीन बना रहा।'

दूसरे ने कहा—'वह एक-एक पैसे के लिए लोगों के आगे हाथ पसारता रहा।'

तीसरा बोला—'जिस स्थान पर वह बैठा रहता था उस स्थान पर अपार धन का पात्र निकला।'

चौथे ने कहा—'सभी भाग्य की बातें हैं। उसके भाग्य में तो दीनता ही लिखी थी।'

जब लोग इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे, तो आकाश-वाणी हुई, हम सबकी यही दशा है। हमारे अन्दर भी तो अनमोल सम्पदा छिपी पड़ी है पर हमें उसका आभास नहीं होता। हम दिन-रात संसार में रहते हुए दीन बने हुए हैं। उस भिखारी की तरह मांगते फिरते हैं। मन में संतोष नहीं रखते। आकाशवाणी की बातें सुनकर इन्हें बोध को प्राप्ति हुई। अक्षय धन के पात्र के साथ किसी ने हाथ नहीं लगाया। लोग अपने-अपने घरों को लौट गए। आकाशवाणी की बातें उनके कानों में काफी समय तक गूंजती रहीं।

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

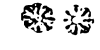

पाप से मुक्ति

सुप्रसिद्ध सन्त एकनाथ अपने आश्रम में रहा करते थे। कई सज्जन श्रद्धाभाव से उनके प्रवचन सुनने तथा दर्शनार्थ वहां आते। जिज्ञासु उनसे प्रश्न भी पूछते। सन्त एकनाथ जी उनके प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर उनकी शंकाओं का समाधान करवाते।

एक दिन संत एकनाथ से एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया, "महाराज! आपका जीवन बड़ा निष्पाप और पवित्र है। हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं बनता?"

संत जो ने कहा—'सात दिन के पश्चात तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।'

संत जी के मुंह से इतनी बात सुनकर वे सज्जन तो हक्के-बक्के रह गए। उन्हें कुछ न सूझा और भागे घर की ओर। उन्होंने झट सभी लेन-देन कर लिया। कई अधूरे कामों को छः दिन के भीतर निवटा लिया। उसके बाद उन्होंने खाट पकड़ ली।

सातवें दिन संत एकनाथ जी भी उनके घर पहुंच गए। उस सज्जन ने उठकर संत जो को प्रणाम किया। संत जी ने कुशल-क्षम पूछते हुए कहा—'क्या हाल है तुम्हारा?'

'महाराज क्या हाल बताऊं? अब तो चलने की तैयारी है।' उस सज्जन ने घबरा कर कहा।

संत बोले—'इन छः दिनों में तुमने कोई पाप तो नहीं किया?'

'न महाराज ! पाप करने की भला फुर्सत ही कहां ?' मैं तो अधूरे कामों को वड़ी ईमानदारी के साथ निवटाता रहा। छः दिनों के वीतते देर न लगी। पाप का विचार तो मन में आया तक नहीं। सामने मृत्यु जो खड़ी थी।'-- वह सज्जन वोला।

संत एकनाथ वोले -'ठीक है, सामने मृत्यु खड़ी हो तो पाप का विचार मन में उठता नहीं। मन पवित्र वना रहता है। मैं मृत्यु को सदैव अपने सामने पाता हूं। इसीलिए मेरा जीवन पवित्र और निष्पाप है। वस, पाप से मुक्ति का यही एक उपाय है कि ईश्वर और मौत को हर समय याद रखो।'

वे सज्जन संत जी के विचारों को सुन कर वड़े प्रसन्न हुए। क्योंकि उन्होंने संत की वोधपूर्ण वातों द्वारा पाप से मुक्ति का उपाय समझ लिया था।

सेठ का अहंकार

एक था कोई सेठ। धन इकट्ठा करना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन चुका था। धन से उसने बड़ी सुन्दर और विशाल कोठी बना रखी थी। अपने धन पर उसे बड़ा अहंकार था। जब उसके पास एक लाख रुपया इकट्ठा हो जाता था तो अपनी कोठी पर एक झण्डा गाड़ देता था। जब वह सात लाख का स्वामी हो गया तो उसकी कोठी पर सात झण्डे लहराने लगे। सेठ अहंकारी हो गया।

एक बार श्री गुरू नानक देव जी अपने शिष्यों के साथ श्रमण करते हुए उस मार्ग से गुजरे। उस कोठी पर उन सात झण्डों को लहराता देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने शिष्यों से पूछा कि यह किसका महल है जिस पर यह सात झण्डे लहरा रहे हैं?

शिष्य हाथ जोड़ कर बोला—"महाराज! यह एक सेठ की कोठी है। जब इसके पास एक लाख रुपया इकट्ठा हो जाता है तो यह अपनी कोठी पर एक झण्डा गाड़ देता है। अब तो यह सात लाख का स्वामी बन गया है। इसीलिए इसकी कोठी पर सात झण्डे लहरा रहे हैं।"

शिष्यों से इस प्रकार सुन कर गुरू नानक देव जी उस कोठी के द्वार पर जाकर खड़े हो गए। जब सेठ जी को गुरू जी के आगमन का पता चला तो वह गुरू जी के स्वागत के लिए बाहर

आया। कोठी के अन्दर पधारने के लिए प्रार्थना करने लगा। गुरू नानक देव वोले—'आज तो हमारे पास समय नहीं है मेरे पास सोने की एक सूई है इसे अपने पास सुरक्षित रख छोड़ना और परलोक में हमें दे देना। सेठ आश्चर्य भरी दृष्टि से वोला—'गुरूदेव परलोक में प्रत्येक जीव को खाली हाथ जाना पड़ता है। कोई भी जीव अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सकता। सब कुछ यहीं पर ही छोड़ना पड़ता है।'

गुरू नानक देव वोले 'जव तुम सात लाख को ले जा सकते हो तो क्या इस मामूली सी वजन वाली सूई को नहीं ले जा सकते?'

इतना सुनते ही सेठ को वोध की प्राप्ति हुई। उसने अपना सारा धन परोपकार के लिए खर्च कर दिया और व्यर्थ अहंकार करना छोड़ दिया।

—०—

कर्मठ हाथ

बात उन दिनों की है जब सिक्खों के दसवें गुरू गोविन्द सिंह जी आनन्दपुर साहिब में निवास कर रहे थे। एक दिन वे दरबार में बैठे थे कि उन्हें प्यास लगी। उन्होंने कहा—"कोई मुझे अपने पवित्र हाथों से जल पिलाने का कष्ट तो करे।"

इतना सुनते ही उनके पास बैठा एक सम्पन्न व्यक्ति उठा और जल्दी से पानी का गिलास ले आया। पानी से भरे उस गिलास को जब गुरू जी ले रहे थे तो उनके हाथ का स्पर्श उस व्यक्ति के हाथ से हो गया। गुरू जी ने तपाक से उस व्यक्ति को पूछा—'अरे भाई! तुम्हारे हाथ इतने कोमल क्यों हैं!'

गुरू जी के मुख से इस प्रकार की प्रशंसा सुन कर वह व्यक्ति फूला न समाया। वह प्रफुल्लित होकर बोला—"गुरू जी! मेरे हाथ इसलिए कोमल हैं कि आज दिन तक मैंने कोई भी काम इन हाथों से नहीं किया। सारे के सारे काम नौकर ही करते हैं।"

गुरू जी फिर बड़े ही धीमे स्वर में बोले—"मैं तुम्हारे हाथों का जल नहीं पीऊंगा। जिन हाथों द्वारा कभी सेवा नहीं हुई वह कैसे पवित्र हो सकते हैं? पवित्रता तो तब आती है जब हम इन हाथों द्वारा परिश्रम और सेवा करें।"

वह व्यक्ति गुरू जी की वातों को सुन कर बड़ा लज्जित हुआ। उसने परिश्रम करने का संकल्प किया। उसने जी तोड़ परिश्रम किया और अपने कर्मठ हाथों द्वारा काम करके उसने वड़ा यश प्राप्त किया।

—: o :—

श्वेतकेतु का अनुभव

महर्षि आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को विद्या-अध्ययन के लिए गुरकुल में भेजा। वहां रहकर श्वेतकेतु बड़ी निष्ठा के साथ विद्या प्राप्त करने लगे। वे अपने गुरू का बड़ा सम्मान करते। उनके प्रति सेवा-भाव रखते। अपनी कर्तव्यनिष्ठा और गुरू की कृपा से श्वेतकेतु शीघ्र ही वेद ज्ञानी वन गए।

वेद-विद्या प्राप्त करने के पश्चात वे अपने घर लौट आए। उन्हें अपनो विद्वता पर बड़ा अभिमान हो गया। घर पहुंच कर उन्होंने अभिमानवश अपने पिता महर्षि आरुणि को भो प्रणाम न किया। अपने पुत्र को अहकारयुक्त देखकर महर्षि आरुणि बोले "पुत्र ! आपने ऐसी कौन सो विद्या पढ़ी है जिससे तुम अपने पिता को प्रणाम करना भी भूल गए। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि विद्या का सच्चा स्वरूप तो विनम्रता है। विद्वान पुरुष यदि मन में अहंकार रखता है और विनम्र नहीं है तो उसकी विद्या निष्फल है।"

पिता की बोध भरी बातों को सुनकर श्वेतकेतु ने अनुभव किया कि उसने बड़ो भारी भूल की है। उसका अहंकार चूर-चूर हो गया। श्वेतकेतु अपने पिता के चरणों में पड़ कर क्षमायाचना करने लगा।

देवताओं की बुद्धिमत्ता

एक बार देवताओं और राक्षसों का झगड़ा चल पड़ा। दोनों अपने आप को एक-दूसरे से बुद्धिमान बताते थे। हार तो किसी ने मानी नहीं। निर्णय भी न हो सका। अन्त में दोनों इस बात पर राजी हो गए कि चलो ब्रह्म लोक में जाकर ब्रह्मा जी से निर्णय करवाते हैं। ब्रह्मा जी जिसे बुद्धिमान बतलाएंगे वही बुद्धिमान कहलाएगा।

एक दिन वे ब्रह्मलोक को चल पड़े। पहुंच गए ब्रह्मा जी के पास। अपनी बात उन्हें बतला दी कि वे किस प्रयोजन से ब्रह्म-लोक में पधारे हैं। ब्रह्मा जी पहले तो उनकी बात सुनकर मुस्कराए। फिर बोले—"बस! अभी तुम्हारा निर्णय कर देता हूं।" उन्होंने लम्बे सोधे डण्डे लेकर देवताओं और राक्षसों की भुजाएं कन्धे से लेकर हाथ तक कस कर बांध दीं।

फिर ब्रह्मा जी ने एक बड़ी थाली में चावल परोसकर रख दिए। राक्षसों से ब्रह्मा जी बोले—"अब तुम इन चावलों को खाकर अपनी भूख मिटाओ।"

राक्षस लोगों की समझ में न आ रहा था कि चावलों को कैसे खाया जाए। वे असमर्थ होकर सभी का मुख ताकने लगे। फिर ब्रह्मा जी ने देवताओं से कहा—"देवगण! अब आप की बारी है।" उनके हाथ भी उसी तरह सीधे डण्डे से बांध दिए। ब्रह्मा जी फिर बोले अब आप इन चावलों को खाइए।"

देवताओं की बुद्धि काम कर गई। वे एक-दूसरे के मुंह में अपने हाथों से चावल उठा कर देने लगे। सारी थाली को उन्होंने थोड़े समय में ही चट कर डाला।

ब्रह्मा जी राक्षसों से बोले—"देवता लोग बुद्धिमान हैं। इन्होंने परस्पर के सहयोग द्वारा इस कार्य को कर डाला है।"

राक्षसों ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली। वे लज्जित होकर ब्रह्म-लोक से वापिस लौट आए।

सबसे सुखी मनुष्य

एक समय बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध पाटलीपुत्र में विहार कर रहे थे। प्रतिदिन उनका उपदेश सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग आते। एक बार उनका प्रवचन चल रहा था। उनका प्रधान शिष्य था आनन्द। वह बड़ा जिज्ञासु था। उसने बुद्ध से प्रश्न किया, "प्रभु! आपके सम्मुख हजारों की संख्या में यह लोग बैठे हैं। कृपया आप यह बतलाए कि इनमें सबसे सुखी कौन है?'

भगवान बुद्ध ने कहा—'आनन्द सबसे पीछे की पंक्ति में जो किनारे पर दुबला-पतला तथा फटेहाल मनुष्य बैठा है वही सबसे सुखी है।'

आनन्द को इस पर शंका हुई और उसने अपनी शंका बुद्ध के सामने प्रकट की। बुद्ध उसकी शंका निवारण करने के लिए बोले—'अच्छा तनिक ठहरो। तुम्हारी शंका का समाधान भी कर देता हूं। अब महात्मा बुद्ध लोगों से बारी बारी पूछने लगे—तुम्हें क्या चाहिए?"

कोई धनवान बनने की इच्छा प्रकट करता था तो कोई सन्तान प्राप्ति की। कोई बिगड़ी बात बन जाने की कामना रखता था तो कोई स्वास्थ्य लाभ की। सभी ने अपनी-अपनी व्यथा

तथा कामना बतलाई। अन्त में उस फटेहाल मनुष्य की भी बारी आई। बुद्ध ने उससे भी वही प्रश्न किया। वह मनुष्य बोला—'प्रभु! न मुझे धन की आवश्यकता है, न परिवार की। मैं तो बस यही प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे ऐसा वरदान दें जिससे मुझे किसी तरह की चाह न हो।'

आनन्द को उस मनुष्य की बात सुनकर बोध की प्राप्ति हो गई कि सबसे सुखी मनुष्य वही है जिसको कोई चाह नहीं है।

—रामप्रसाद शर्मा

श्रेष्ठ कौन ?

किसी जंगल में कुटिया बनाकर एक महात्मा रहा करते थे। महात्मा जी कन्दमूल खाकर ही अपने पेट की क्षुधा मिटाते। वे कभी भी भिक्षा लेने के लिए बस्ती में न जाते। बहुत से लोग उनके अमृत वचन सुनने के लिए बस्ती को छोड़कर उनकी कुटिया में चले आते थे। महात्मा जी भी बड़े प्रेम से उन्हे सुन्दर-सुन्दर उपयोगी कथाएं सुनाकर उनके चित्त को प्रसन्न कर देते थे।

एक दिन की बात है कि बहुत से लोग महात्मा जी के पास बैठे हुए थे। उनमें एक असभ्य पुरुष भी था। अचानक एक कुत्ता महात्मा जी की कुटिया में आ गया। उस असभ्य पुरुष ने महात्मा से पूछा—'महात्मन्! आप श्रेष्ठ हैं या यह कुत्ता?'

महात्मा ने कहा—'यदि मैं ईश्वर को सेवा के लिए कर्म करता हूं तो मैं श्रेष्ठ हूं और यदि मैं भोग-विलास में जीवन बिताता हूं तो मेरे जैसे सैकड़ों मनुष्यों से यह कुत्ता ही श्रेष्ठ है।'

महात्मा जी के मुख से इस तरह का बोधपूर्ण उत्तर सुनकर सभी लोग चकित रह गए।

—o—

किसान की बुद्धिमत्ता

एक समय की बात है कि जापान देश में भयंकर अकाल पड़ा। कई दिन वर्षा हुई नहीं, पेड़-पौधे सूखने लगे। धरती की हरियाली लोप होने लगी। फसल उगी नहीं तो इधर अन्न के भण्डार भी समाप्त हो गए। जीव-जन्तु भूख के मारे व्याकुल होने लगे।

एक गांव में एक निर्धन किसान का घर था। उसके पास धान की एक बोरी पड़ी थी। उस अनाज से उसका जीवन कई दिनों तक चल सकता था। किसान ने सोचा यदि इस धान की बोरी द्वारा अपनी भूख कुछ दिनों के लिए मिटा भी लूं तो अगली फसल के लिए धान के बीज किसी के पास नहीं। अगर बीज न मिल सकेंगे तो अगली फसल भी न हो सकेगी।

उस किसान ने दृढ़ संकल्प किया कि वह अनशन रखेगा। भले ही उसके प्राण क्यों न चले जाएं पर वह इन बीजों को अगली फसल के लिए सुरक्षित रखेगा। वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। परिणामस्वरूप एक दिन भूख से व्याकुल उस किसान के प्राण-पखेरू उड़ गए।

उसके बाद परिवार के दूसरे सदस्यों ने लोगों को बताया

कि उसने अनशन इसलिए रखा हुआ था ताकि अगली फसल के लिए बीज उपलब्ध हो सकें। लोग उस किसान की बुद्धिमत्ता और त्याग पर बड़े प्रभावित हुए। कुछ दिनों के बाद वर्षा हुई लोगों ने उस किसान के घर से धान के बीज लेकर भरपूर फसल उगाई।

बाल्मीकि भए ब्रह्म ज्ञाना

महर्षि वाल्मीकि पहले एक डाकू हुआ करते थे। नाम था उनका रत्नाकर। राह चलते यात्रियों को लूटना उनका व्यवसाय वन चुका था। एक वार उनकी भेंट सप्तऋषियों से हो गई। रत्ना ने पूछा—'कौन हो तुम लोग ?'

सप्तऋषि वड़ी निर्भयता से बोले—'पहले तुम वतलाओ कि तुम कौन हो ?'

उन ऋषियों के उत्तर को सुनकर डाकू कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गया। फिर गर्जता हुआ वोला—'ऋषियो ! यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हैं तो जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसे यहां पर रख कर भाग जाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण है।'

सप्तऋषि बोले—'हमारे पास जो कुछ भी है उसे तुम ले सकते हो। पहले हमारे प्रश्नों का उत्तर तो दीजिए।'

'क्या पूछना चाहते हो तुम लोग ?' रत्नाकर ने कड़कती आवाज में प्रश्न किया।

ऋषि वोले—'तुम इस प्रकार की लूटमार क्यों करते हो ? प्रतिदिन तुम जो हिंसा करते हो क्या यह पाप नहीं ? क्या ऐसा दुष्कर्म करके तुम सुख से रह सकोगे ?'

ऋषियों के इन प्रश्नों को सुनकर रत्नाकर बोला—'यदि मैं ऐसा न करूं तो पत्नी और बच्चोंका पालन पोषण कैसे करूंगा? इन सबका पेट भरने के लिए मुझे ऐसा करना ही पड़ता है।'

ऋषि बोले—'बुरी प्रक्रिया द्वारा पेट भरना ठीक नहीं। पापकर्म द्वारा यदि तुम धन जुटाओगे तो उसका फल तुम्हें ही भुगतना पड़ेगा।'

रत्नाकर ने कहा—'जिनकी उदर पूर्ति के लिए मैं जो भी कर्म करता हूं उससे मिलने वाले पाप-पुण्य, सुख-दुःख के वे सभी हिस्सेदार हैं।'

ऋषि बोले—'अभी तक तुम संशय में हो। तुम जाकर अपनी पत्नी और बच्चों से तो पूछो कि वे तुम्हारे कर्मों के भागी बनते भी हैं या नहीं?'

रत्नाकर घर गया। अपनी पत्नी और बच्चों से पूछा—'क्या मेरे पाप कर्मों के आप भागी बनोगे?'

'कदापि नहीं!' सभी एक स्वर में बोल पड़े।

इस प्रकार के उत्तर को सुनकर रत्नाकर के मन में बड़ी वेदना हुई। उसने अपने जीवन को धिक्कारा। वह ऋषियों के पास वापिस लौट आया। जाकर उनके चरणों में गिर पड़ा। कातर स्वर में ऋषियों से बोला—'अब मेरा उद्धार कैसे होगा? जिनके लिए मैंने इतने पाप कर्म किए, अनगिनत हत्यायें कीं उनमें से कोई भी पाप कर्म के फल को भोगने के लिए तैयार नहीं है।'

ऋषि बोले—'अब तुम्हारे उद्धार का सर्वोत्कृष्ट मार्ग यही है कि तुम सदाचार को अपना लो। अपने पापों का प्रायश्चित कर डालो। राम नाम का जप करो तभी तुम्हारा उद्धार हो सकेगा।'

पूर्व संस्कारों के कारण रत्नाकर की जिह्वा से राम-राम निकलना असंभव था। अतः वह मरा-मरा कह कर प्रायश्चित करने लगा। वही डाकू रत्नाकर महर्षि वाल्मीकि बन गया। उसे ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो गया।

उल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भए ब्रह्म ज्ञाना।।

जहां सुमति वहां सम्पति नाना

बहुत पुरानी बात है। उज्जैन नगरी में एक सेठ जी रहा करते थे। नाम था उनका धन्नाशाह। सेठ जी बड़े ही धर्म-परायण थे। सभी लोग उनका सम्मान करते थे। उनके यहां किसी वस्तु की कमी न थी। लक्ष्मी की तो उन पर अपार कृपा थी। ज्योति पर्व दीपावली के दिन वे सच्चे मन से लक्ष्मी-पूजन किया करते। एक दिन धन्नाशाह को स्वप्न में साक्षात् लक्ष्मी दिखाई दी। उसने कहा—"धन्नाशाह ! मैं कई वर्षों से आपके घर रह रही हूं। तुम्हारी भक्ति पर बड़ी प्रसन्न हूं। कहीं जाने को मन भी नहीं करता पर स्वभाववश स्थाई रूप से रह भी नहीं सकती। इसलिए अब मैं आपके घर से चली जाऊंगी। तुम्हारी सेवा और भक्ति से प्रसन्न होकर मैं तुझे एक मुंह-माँगा वरदान दूंगी।"

धन की देवी लक्ष्मी के मुंह से ऐसी बात सुनकर सेठ जी अवाक् रह गए। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि लक्ष्मी से वह क्या वरदान मांगे। जब लक्ष्मी ने सेठ जी की ऐसी दशा देखी तो फिर बोली—"कल तक तुम सोच लो, मैं कल रात तक अवश्य आऊंगी तब तुम अपनी इच्छा बतला देना।" इतना कह

कर लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई। सेठ जी गहरी सोच में डूब गए।

प्रातः होते ही सेठ जी ने अपने घर के सभी सदस्यों को बुलाया। लक्ष्मी वाली बात सभी को सुना दी। सभी से परामर्श मांगा कि वह लक्ष्मी से क्या वरदान मांगें। घर के सभी सदस्यों ने अलग-अलग सुझाव दिए। कोई हीरे-जवाहरात मांगने के लिए कह रहा था तो कोई सोना-चांदी के लिए। कोई पुत्र-पौत्र के लिए कह रहा था तो कोई जमीन-जायदाद के लिए। मगर सेठ जी को इनमें से कोई भी परामर्श अच्छा न लग रहा था। वह कोई स्थाई महत्व की वस्तु चाहता था। अन्त में सेठ की छोटी बहु ने परामर्श देते हुए कहा—"पिताजी! अगर आपने लक्ष्मी से मुंह मांगा वरदान पाना है तो केवल यह मांग कीजिए कि हमारे घर में कभी झगड़े और कलह का वातावरण पैदा न हो। हम सदैव प्रेम और शान्तिपूर्वक रहें। हमारे घर में एकता बनी रहे। सभी मिल-जुल कर रहें। इससे अधिक कुछ न चाहिए।"

सेठ जी को छोटी बहु का परामर्श सबसे अच्छा लगा। उन्होंने निश्चय किया कि वह लक्ष्मी से वही वरदान मांगेगा जो छोटी बहु ने बतलाया है। दिन व्यतीत हुआ। रात्रि का आगमन हुआ। सेठ जी सोने लगे तो साक्षात् लक्ष्मी उनके सामने फिर प्रकट हुई और वर मांगने के लिए कहा। सेठ जी ने बड़ी विनम्रता से कहा—"देवी! वरदान स्वरूप मेरे घर में कभी झगड़े और कलह का वातावरण पैदा न हो। घर के सभी सदस्य प्रेम-शान्ति से मिल-जुलकर रहें।"

सेठ धन्नाशाह की बात सुनकर लक्ष्मी भी हतप्रभ रह गई। इस वरदान का अर्थ था सेठ जी के घर में सदा के लिए लक्ष्मी का बस जाना। मगर वह वचनबद्ध थी। तब वह बोली—'धन्ना शाह! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तुम्हारे घर में कभी-झगड़े और कलह का वातावरण पैदा न होगा। एकता बनी रहेगी।

प्रेम और शांति का साम्राज्य होगा। तुमने तो अब मुझे सदा के लिए बांध लिया है। मुझे तो अब स्थाई रूप में तुम्हारे घर में रहना पड़ेगा। जिस घर में सुमति है मैं वहीं निवास करती हूं।'

लक्ष्मी का वरदान पाकर धन्नाशाह बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि छोटी बहु ने अपनी बुद्धिमता से घर से जाती हुई लक्ष्मी को बांध लिया था।

राखे जिसको साईंयां.....

जब जगद्गुरू शंकराचार्य वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे तो कुछ लोग उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण उनके शत्रु बन गए थे। एक बार उन्हें एक अघोरी मिला। वह तांत्रिक विद्या जानता था। उस ने शंकराचार्य जी से कहा—"महात्मन्! इस वैदिक धर्म के प्रचार से लोग आपके विरुद्ध हो गए हैं। मैं काली माता की प्रसन्नता के लिए आपकी बलि देना चाहता हूं।"

शंकराचार्य जी ने उसे समझाया कि नरबलि तो महापाप है। पर वह घोरी कहां मानने वाला था। उसने कहा कि यदि देवी माता की पूजा नर के खून से की जाए तो वह प्रसन्न हो जाती है। तान्त्रिक धर्म में यही विधान है।

"मुझे मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है। यदि मैं इसी समय अपने शरीर का त्यागकर दूं तो वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य अधूरा रह जाएगा।—" शंकराचार्य जी ने कहा।

उस अघोरी साधु ने कहा "ऋषिवर! आप जैसे पुण्यात्मा के रक्तपान से देवी मुझ पर अति प्रसन्न होगी। मेरी मनोकामना को पूरा करने में वह तनिक भी देर न लगाएगी।"

"यदि तुम इसमें अपना कल्याण समझते हो तो मैं बलिदान के लिए तैयार हूं। मैं चार दिन के पश्चात् सूर्योदय के समय में तुम्हें नदी-तट पर ध्यान मग्न मिलूंगा। तब तुम वहां आकर मेरा सिर काट लेना।" - शंकराचार्य ने कहा।

ठीक चौथे दिन शंकराचार्य की ब्रह्ममूर्त में नदी-तट पर गए। वहां उन्होंने स्नान किया। फिर प्रभु-भक्ति में लीन होकर बैठ गए।

वह अघोरी साधु भाला लिए आया। शंकराचार्य को वहां बैठा देख बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसका सिर काटने के लिए अभी भाला उठाया ही था कि अचानक वहां पर शंकराचार्य का शिष्य आ गया। उसने अपने गुरु पर इस तरह का प्रहार होते देखकर झट भाला पकड़ लिया और उस भाले से उस अघोरी साधु का वध कर दिया। शंकराचार्य जी बाल-बाल बच गए। किसी ने सच ही कहा है—

जाको राखे साइयां मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय॥

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'
पो० आ० सिहाल बाया फत्तेहपुर
तहसील : नूरपुर
जिला : कांगड़ा—176053

हम तो चाखा प्रेम रस.....

गोस्वामी तुलसीदास जी की पत्नी का नाम रत्नावली था। उन्हें अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम था। इसी कारण वे उन्हें मायके भी नहीं भेजना चाहते थे। एक दिन की बात है कि रत्नावली का भाई आया और अपनी बहिन को अपने घर ले गया। तुलसीदास जी उस समय कहीं बाहर गए हुए थे। जब घर लौटे तो पत्नी को न पाकर उनका मन बेचैन हो उठा।

उसी समय मुसलाधार वर्षा में ससुराल चल दिए। मुर्दे को तख्ता समझकर नदी पार कर गए। साप को रस्सा समझकर उसके सहारे लटककर पत्नी के कमरे में पहुंच गए। जब रत्नावती ने आधी रात के समय अपने कामान्ध पति को अपने कमरे में देखा तो उसकी भवें तन गईं। उस ने तुलसीदास को धिक्कारते हुए कहा—

"लाज न लागत आपको, दोरे आवहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ।।
अस्थि-चर्ममय-देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होति न तो भवभीति।।"

अर्थात्—आप को शर्म नहीं आई जो आप मेरे पीछे-पीछे दौड़े चले आए! ऐसा भी क्या प्रेम हो गया जो मेरे इस हाड़-मांस के शरीर से आपको जितना प्रेम है, इतना प्रेम यदि राम से होता तो मोक्ष न मिल जाता।

पत्नी के इस प्रकार के उपदेश से तुलसी के मन में वैराग उत्पन्न हो गया वे वहां से चले आए। बाबा नरहरिदास के चरणों में जाकर गिर पड़े। उससे दीक्षा लेकर गृहस्थ को त्याग दिया, भगवे वस्त्र धारण कर लिए। चित्रकूट जाकर भगवान श्रीराम के दर्शन किए। राम-भक्ति में लीन हो गए।

कहते हैं कि इनकी पत्नी ने एक बार अपने पति को एक दोहा लिखकर भेजा उसमें उसने यह जानने की इच्छा प्रकट की कि उनके दिन कैसे कट रहे हैं। तुलसीदास ने उत्तर में निम्न दोहा लिख भेजा—

"कटे एक रघुनाथ सौं बांध जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम-रस पानी के उपदेश।।"

अर्थात्—सिर पर बाल रख कर, जटाजूट बांधकर भगवान राम के सहारे हम अपना समय काट रहे हैं। पत्नी के उपदेश से हमने भक्ति का रस चख लिया है। —रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा

एक समय की बात है कि एक सन्त जी महाराज अपने एक शिष्य के साथ भ्रमण कर रहे थे। मार्ग में जा रहे थे तो उन्होंने एक तड़फता हुआ सांप देखा। उस सांप का शरीर बुरी तरह घायल था। असंख्य चींटियां उसके घायल शरीर के साथ चिपटी पड़ी थीं। चींटियां उसे काट रही थी !

शिष्य से उस सांप की दयनीय दशा न देखी गई। गुरू से बोला –"महाराज ! यह बेचारा सांप तो इस समय बड़े ही दुःख में है।"

गुरू बोले – अरे अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। शिष्य ने कहा –गुरूदेव इस सांप ने ऐसा कौन सा पाप-कर्म किया है जिससे इसे इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है ?

गुरू बोले – शायद तुम्हें स्मरण न हो। हम एक दिन मार्ग में चले हुए थे। मार्ग में एक सुन्दर सरोवर आया। वहां एक मच्छुआ मछलियां मार रहा था। तुमने उसे ऐसा पाप-कर्म करने से रोका उसने तुम्हारी एक न मानी उल्टा उसने तुम्हें डांटा। तुम्हारा उपहास उड़ाया।

शिष्य बोला—मुझे अब स्मरण हो आया। आह सच कह रहे हैं गुरू ! गुरू पुनः बोले –"यह सर्प वही मछुआ है जो मछलियों का मारता था। ये चींटियां ही पूर्व जन्म में मछलियां थीं। आज यह सांप जो पूर्व जन्म में मछुआ था अपने किए हुए कर्मों का फल भोग रहा है !"

शिष्य बोला तो पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना पड़ता है महाराज। गुरू बोले—"अवश्य। भक्त तुलसी दास जी ने भी तो कहा है—

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करे तस फल चाखा ।।

—राप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

हरि व्यापक सर्वत्र समाना

एक थे सन्त जी। वे किसी जंगल में आश्रम बनाकर रहा करता था कन्दमूल खाकर ही पेट को सुधा मिटाते। किसी नगर या गांव में कभी भिज्ञाटन के लिए न जाते। योग क्रिया में भी बड़े प्रवीण थे। शास्त्रों के धुरंधर विद्वान भी। उनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी।

कई लोग तो उनके शिष्य भी बनना चाहते थे। पर वे किसी को भी शिष्य न बनाते। जब लोग उनके मुख से उनके आश्रम में जाकर हरिचर्चा सुनते तो प्रभु के प्रेम में मतवाले हो जाते हैं सभी को अपनी घर गृहस्थी भूल जाती। लोगों को उनके प्रति अपार श्रद्धा हो गई। सेवा-भाव भी बन गया। दो नवयुवकों ने उनके आश्रम में रहने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वे आश्रम में रहकर सन्त जी को संगति से अपार सुख अनुभव करने लगे।

एक दिन दोनों ने सन्त जी से आग्रह किया कि उन्हें कोई धर्मोपदेश देकर कृतार्थ करें। सन्त जी ने उन्हें राम चरित मानस की एक चौथाई सुनाई।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना।

प्रभु कण-कण में विराजमान हैं। अगर उनसे कोई सच्चा प्रेम करे तो उनके साक्षात दर्शन हो सकते हैं।

सन्त जी अकसर चलते फिरते इस चौपाई को गुनगुनाते।

उन दो नवयुवकों को भी इस चौपाई पर मनन करने को कहते। एक दिन सन्त जी ने सोचा कि इन दोनों ने कहां तक मनन किया है।

एक दिन सन्त जी ने उन दोनों को फल देकर कहा "तुमने इस स्वादिष्ट फल को ऐसी जगह पर खाना है जहां तुम्हें कोई देख न रहा हो। खाकर फिर आश्रम में लौट आना।"

एक नवयुवक ने आश्रम के इधर-उधर देखा और सामने किसी को न देखकर झट खा लिया। दूसरा युवक जिस स्थान पर जाता वहीं उसे इस बात का आभास हो जाता कि यहां पर अगर दुसरा कोई नहीं, प्रभु तो देख ही रहा है उससे फल न खाया गया। वह फल को वापिस लेकर सन्त जी के पास आ गया। सन्त जी ने पूछा—"तुमने फल क्यों नहीं खाया?"

सन्त जी ऐसी कोई जगह नहीं जहां मुझे कोई देख न रहा होता। अगर कोई दूसरा जीव नहीं तो प्रभु तो देख रहे थे आपने ही तो कहा था कि उस स्थान पर जाकर खाना जहां कोई देख न रहा हो नवयुवक ने कहा।

सन्त जी ने युवक की पीठ थप थपाई और बोले तूने उस चौपाई का खूब तनन किया है। सन्त जी फिर गुनगुनाने लगे—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना॥

बड़े भाग मानुष तन पावा

काश्यप नाम के एक ऋषि थे। वे बड़े ही संयमी एवं तपस्वी थे। कन्दमूल खाकर पेट की क्षुधा मिटाते। भगवन्-भक्ति में सदा रत रहते। भिक्षाटन करना उन्हें भाता न था। वे किसी भी गृहस्थी ने द्वार पर जाकर भिक्षा के लिए कभी अलख न जगाते। इसलिए वे ऋषि आर्थिक रूप से कंगाल थे।

एक दिन की बात है कि वे एक रास्ते से गुजर रहे थे। इतने में एक धनी पुरुष अपना रथ लेकर तेज गति में पीछे से आ गया। ऋषि सम्भल न सके। रथ से टकरा कर एक तरफ लुढ़क गए। कहीं-कहीं चोटें भी आईं। ऋषि कहने लगे—ओह! इस संसार में तो निर्धन का जीना ही बेकार है। ऋषि-मुनि हुए तो क्या है? इस शरीर को तपस्या द्वारा सुखाकर कांटा बना लिया। संयम में ही सारा जीवन बिता दिया। इस संसार में तो धनी लोग अच्छे हैं। रथों पर सवार होकर जाते हैं। राह चलते हुए निर्धन प्राणियों को तनिक परवाह नहीं करते। यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो अच्छा था। इस संसार से छूट जाता तो अच्छा था। 'अधमरा हो गया हूं मैं तो अब इस देह का त्याग ही कर दूंगा।'

काश्यप मुनि इस तरह की बातें कह ही रहे थे कि इतने में

एक गीदड़ झाड़ी के पीछे से निकला। गीदड़ ने ऋषि को उदास देखकर कहा—'हे मुनिश्रेष्ठ ! मानव योनी पाने की लालसा तो प्रत्येक जीव में होती है। आप तो बड़े भाग्यशाली हैं जो आपको मनुष्य का तन मिला हुआ है। मनुष्य का जन्म पाकर भी आप संयम से रहते हैं। प्रभु के नाम की आप अराधना करते हैं। तुम्हारा कर्म बड़ा ही श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। हे ऋषिवर ! समझ में नहीं आता कि आप इस संसार से विरक्त होकर क्यों नर-देह का त्याग करना चाहते हैं ? आप तनिक मेरी ओर तो देखिए। जंगली जानवर हूं। जंगल की कांटेदार झाड़ियों से मेरा शरीर छलनी हो गया है। मेरे शरीर में कांटे ही कांटे गड़ गए हैं। आप तो मानव योनी में हैं। सर्दी-गर्मी, धूप-वर्षा आदि से अपने शरीर की रक्षा तो कर सकते हैं। जो दु:ख हम जैसे बे-जुबान और दुर्बल प्राणी सहन करते हैं आप उससे तो बचे हुए हैं। आपको सन्तुष्ट होना चाहिए कि आप सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। मनुष्य यदि धनिक हो तो राज्य की चाह करता है यदि राज्य मिल जाए तो देवत्व की कामना करने लगता है इससे तो कभी तृप्ति नहीं होती। आप अपनी देह त्यागने का विचार छोड़ दें। मैं तो एक जंगली जानवर हूं, आप एक संयमी और तपस्वी ऋषि। मैं आपको क्या समझा सकता हूं।

ऋषि ने जब गीदड़ की बातें सुनी तो उन्हें मानव शरीर की महत्ता का भान हुआ। उसका दु:ख जाता रहा। सारा क्रोध शांत हो गया।

—रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'

दया धर्म का मूल है

सुप्रसिद्ध भक्त नामदेव को उनकी माता नामू कह कर पुकारती थी। नामू अभी बालक ही था कि उसकी माता एक दिन बीमार पड़ गई। वैद्य ने पलास के पेड़ के छिलकों से दवाई सेवन करने को कहा। माता ने नामू को कहा कि वह पलास के पेड़ के छिलके जंगल में से ले आए। नामू जंगल में गया और पेड़ पर कुल्हाड़ी चलाकर छाल उतार ली।

नामू ने महसूस किया कि पेड़ रो रहा है। उसने सोचा कि शायद इसे दर्द हो रही होगी। यह जानने के लिए नामू ने सोचा कि कुल्हाड़ी द्वार अपने पैर की छाल उतार कर तो देखूं। उसने कुल्हाड़ी से अपना थोड़ा सा पांव छील लिया। रक्त की धारा बहने लगी फिर उसने अपने पैर पर पट्टी बांध ली। रक्त के धब्बे उसकी धोती पर भी पड़ गए। वह लंगड़ाता-लंगड़ाता अपने घर पहुंच गया।

मां ने देखा कि नामू की धोती पर रक्त के धब्बे पड़े हैं। पैर भी रक्त के साथ लथपथ है।

तुझे यह क्या हुआ नाम? मां ने आश्चर्यचकित हो कर पूछा।

'मां! मैंने कुल्हाड़ी द्वारा पैर छीलकर देखा था'— नामू बोला।

'मूर्ख! ऐसा नहीं करते। क्या कोई अपने पैर पर भी

कुल्हाड़ी [illegible] है ! यदि पैर सड़ गया यो पैर को कटवाने तक को नोवत आ जाती है ।' माँ ने कहा ।

तव तो इन पेड़ों को भी कुल्हाड़ी से दर्द होती होगी। मनुष्य की तरह दूसरे पेड़-पौधों और जोव जन्तुओं में भी जी है। आपने मुझे उस पलास के पेड़ से छोलकर छिलके लाने के लिए कुल्हाड़ी क्यों दी थी ? नामू ने कहा ।

मां बोली—तेरी वात सच है बेटा। जैसे हम अपने शरीर पर चोट लगने से दूःख होता है, वैसे इन पेड़ों को भी दुःख होता होगा। हमें इन पर दया का भाव रखना चाहिए। निर्दयता के साथ पेढ़-पौधों को नहीं काटना चाहिए क्योंकि ये भी हमारी तरह प्राणवान है ।

मां फिर वोली—सन्त तुलसीदास ने भो सच ही कहा है कि—

नया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
'तुलसी' दया न छोड़ए, जब लग घट में प्राण ।।

— रामप्रसाद शर्मा

Acc. No. G-1238
20.4.92

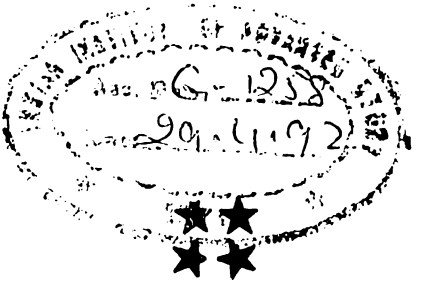

लेखक परिचय

अनेक साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत
ी रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद' बाल-साहित्य-लेखक हैं। बाल-साहित्य-जगत को
होंने अपनी कृतियों द्वारा समृद्धि प्रदान की है। व्यवसाय से अध्यापक होने के
ते बाल-मन की गहराईयों तक उतरने में सक्षम हैं। बाल-साहित्य के अन्तर्गत
ने वाली पुस्तकों में इनकी चार प्रमुख कृतियां निम्नलिखित हैं—

(1) स्मृतिकलश (लघु एवं प्रेरक कथा संग्रह)

(2) भक्ति सरोवर (बाल एकांकी संग्रह)

(3) बोध-कलश (बोध-कथा संग्रह)

(4) अमृत-कलश (काव्य संग्रह)

'बाल-साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसे ... -प्रेम,
...ा प्राणी मात्र के प्रति सौहार्द तथा प्र... भाव-
...ँ जागृत हो सकें' ऐसा इनका मत है।

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Sh 23 B
G1258

—प्रकाशक